International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 287-288

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 287-288
www.allresearchjournal.com
Received: 21-11-2016
Accepted: 26-12-2016

डा० नीता माथुर
एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

Corresponding Author:
डा० नीता माथुर
एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

"सांस्कृतिक चेतना के विकास मे संगीत का योगदान" (बसंत एवं होली गान के संदर्भ मे)

डा० नीता माथुर

सारांशः
भारतीय संस्कृति में वसंत और होलिकोत्सव मनाने की सुदीर्घ परंपरा रही है। वसंत और फाल्गुन ऋतु में श्रंगार रसात्मक नृत्य-गान की अनेकानेक संगीत विधाएं हैं जिन्होंने भारतीय संगीत एवं संस्कृति को समृद्ध किया है। रास, रासक, चर्चरी, धम्माली, फागु रास इत्यादि परंपराओं की विशाल धरोहर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्य गीत शैलियों में दिखाई देती है। ये विधाएं विभिन्न प्रान्तों के निवासियों की अभिरुचि एवं परंपरागत संस्कारों के अनुरूप विकसित हुई हैं।

प्रस्तावनाः
संगीत किसी भी देश की सांस्कृतिक विरासत का एक अभिन्न अंग होता है । किसी भी देश अथवा प्रदेश की संगीत संपदा, संगीत धरोहर वहां की संस्कृति को और अधिक समृद्ध और परिपोषित करती है । किसी भी संस्कृति की उत्कृष्टता का आकलन वहां विकसित हुई संगीत शैलियो से किया जा सकता है । जिस देश अथवा प्रदेश का संगीत जितना परिष्कृत, संस्कारित, शास्त्र संमत और शिष्ट जन संमत होगा, उसकी संस्कृति भी उतनी ही समृद्ध और परिमार्जित मानी जाती है ।
'संस्कृति' वस्तुतः एक बहुत व्यापक अवधारणा है जिसके अंतर्गत विभिन्न तत्वों का समावेश है । संस्कृति के अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, प्रथाएँ, आस्थाएँ, पर्व, उत्सव, रीति रिवाज तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप मे प्राप्त करता है ।
वैदिक युग भारत की सांस्कृतिक चेतना और संगीत के विकास क्रम का प्राचीनतम युग माना जा सकता है । वैदिक साहित्य, पुराण शास्त्रों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, संस्कृत के विभिन्न काव्यो, नाटकों, आख्यायिकाओ, प्राकृत – अपभ्रंश और क्षेत्रीय साहित्य की रचनाओं से तत्कालीन संस्कृति और संगीत के विकास का गौरवशाली रूप उजागर होता है ।
भारतीय संस्कृति अत्यंत पुरातन काल से ही धर्म और आध्यात्म से अनुप्राणित रही है । भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सर्वप्रथम रूप वैदिक साहित्य मे उपलब्ध होता है । वेद चतुष्टयी मे (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) मे सामवेद का संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों मे "साम" का गायन अनिवार्य रूप से होता था। विशिष्ट सामो का सम्बन्ध विभिन्न ऋतुओ से भी निर्दिष्ट किया गया है। जैसे रथन्तर साम बसंत ऋतु मे, बृहत्साम ग्रीष्म ऋतु मे, वैरूप का वर्षा मे, शाक्वर और रैवत का गान हेमंत ऋतु मे। वैदिक काल मे विभिन्न ऋतुओ से सम्बद्ध यज्ञ होते थे जिन्हें 'चातुर्मास्य' के नाम से जाना जाता था । ये ऋतु प्रधान यज्ञ पद्दति थी जिनमे विविध साम प्रकारों का गायन अभीष्ट था । बसंत ऋतु मे रथन्तर साम 'रथन्तर साम त्रिवृत्स्तोमो वसंत ऋतुः' इस प्रकार निर्देश है । (1) 'ऋतुष पंचविध सामोपासित' इस प्रकार साम की पञ्च भक्तियों का संबंध भी विशिष्ट ऋतुओं से किया गया है । वसंत हिंकार, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद प्रतिहार और हेमन्त निधन है, ऐसी तुलना की गयी है ।
वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थो के अतिरिक्त संस्कृत के विभिन्न काव्यों, नाटको, रामायण, महाभारत, भरतकृत नाट्यशास्त्र, कालिदास के मालविकाग्नि मित्र, हर्षचरित (वाणभट्ट) हर्षकृत रत्नावली, राजशेखर की कर्पूरमंजरी, भोज के श्रंगार प्रकाश इत्यादि ग्रन्थो से विदित होता है कि भारतीय संस्कृति मे श्रंगार और आनंद, उल्लास की अभिव्यक्ति के रूप मे बसंत और होली क्रीडा के आयोजन की एक सुदीर्घ परम्परा रही है । वात्स्यायन के अनुसार एक सुसंस्कृत नागरक को अपनी दिनचर्या मे कलाओं द्वारा मनोविनोद करना चाहिए। तत्कालीन समाज मे प्रमुख लोकोत्सवों – सुवसंतक, मदनोत्सव आदि मे सामूहिक रूप से नृत्य गीत वाद्य आदि के आयोजन की बात कही है । 'होलाका' और 'उदकक्ष्वेडिका' नामक उत्सव की भी चर्चा वात्सयायन के 'कामसूत्र' मे मिलती है जो वर्तमान

होली का ही पूर्व रूप है। (2) जैन ग्रन्थो मे भी होली के अवसर पर नगर मार्गो पर सामूहिक रूप से नृत्य गानादि के प्रदर्शन का उल्लेख मिलता है । पुराणों मे मत्स्यपुराण, भविष्य पुराण इनके साक्ष्य से ज्ञात होता है कि मदनोत्सव कई दिनों तक मनाया जाता था ।

बसंत और होली मे श्रंगार रस पूर्ण और मधुरात्मक गीत विधाओ के आयोजन की परम्परा रही है । फाल्गुन मास मे श्रंगार रस पूर्ण और बसंत के वैभव गान से जुडी कई गायन नृत्य परम्पराएँ हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया है । इनमे रास, रासक, नाट्य रासक, चर्चरी, धम्माली जैसी सशक्त सांस्कृतिक परम्पराओ का समावेश है जिनका विकास भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं क्षेत्रों के निवासियों की अभिरुचि, भाषा, रहन सहन, व्यवहार और परम्परागत संस्कारो के अनुरूप हुआ है ।

भारतीय संस्कृति के परिपोषण मे मध्यकालीन वैष्णव धर्मोपासक विभिन्न सम्प्रदायों का अप्रतिम योगदान रहा है । भक्ति आन्दोलन के साथ इन विभिन्न सम्प्रदायों–वल्लभ, राधावल्लभ, निम्बार्क, गौडीय एवं हरिदासी सम्प्रदायों के नित्य एवं वर्षोत्सव सेवाओ मे विभिन्न राग, ताल एवं पद गायन की परम्परा रही है । इनका साहित्य एवं संगीत जगत मे अविस्मरणीय योगदान है । ब्रजभाषा के कवियों ने भी वसंत–होली वर्णन युक्त पदों मे धमार, धमारी, चांचरी, फाग जैसी गीत विधाओ का उल्लेख किया है । (3)

केवल हिन्दू संस्कृति मे ही नहीं बल्कि सूफियो की परम्परा मे भी वसंत ऋतु मे कव्वालियो के माध्यम से 'वसंत' और 'रंग' जैसी विधाओं का प्रचलन हुआ । सूफियो की खानकाहो मे हिन्दू मुरीदो के प्रवेश के साथ हिन्दू संस्कृति के कई तत्वों का मिश्रण सूफी परम्परा मे, विशेष रूप से चिश्ती संप्रदाय मे हुआ । विशेषकर दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों मे हिंदी भाषा मे रचे गीतों को 'समा' आयोजनों मे विशेष स्थान मिलने लगा । 'समा' मे ब्रज, अवधी आदि भारतीय भाषाओं मे रचे गीतों का विशेष प्रचलन था। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह भारतीय समाज मे सांप्रदायिक समन्वय और सांस्कृतिक आदान प्रदान का युग था । जहां एक और सूफी दर्शन एवं विचारधारा का प्रभाव भारतीय समाज पर हुआ वहीं दूसरी ओर हिन्दू संस्कृति ने भी सूफी अनुयायियों को प्रभावित किया । यहाँ के लोक जीवन, आचार–विचार, रीतिरिवाज, पर्वोत्सवों आदि से भी सूफी साधक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । हिन्दू संस्कृति मे मनाए जाने वाले विभिन्न पर्व, सामाजिक उत्सवों के आयोजन और तत्संबंधी गान विधाओं को सूफियो ने भी 'समा' एवं अन्य क्रियाकलापों में स्थान दिया ।

वसंत ऋतु मे वसंत, रंग, धमाल गाने का प्रचलन हजरत अमीर खुसरो से हुआ । 'हजरत ख्वाजा संग खेलिये धमाल', 'अरब यार तोरी बसंत मनाई' 'आज रंग है री मा रंग है री' 'मोहे अपने ही रंग मे रंग ले' जैसी रचनाएं आज भी सूफियो की परम्परा मे गाई जाती हैं जो इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। न केवल लोक या ग्रामीण जीवन मे, बल्कि शाही दरबारों और रजवाड़ो मे भी दोनों ही सम्प्रदायो के उत्सव समारोहों मे आदान प्रदान और सांप्रदायिक समन्वय की झलक मिलती है।

मुगलों के राज्यकाल मे संस्कृति एवं कलाओं का अदभुत समन्वय हुआ । मुगलों की राजधानी आगरा थी जोकि ब्रज प्रदेश के ही समीप थी अत: ब्रज की संस्कृति, संगीत और कलाओ का प्रभाव मुगल राज दरबार पर भी पड़ा । मुगल सम्राट अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, शाह आलम, बहादुरशाह जफर आदि के नाम से अंकित होरियाँ मिलती हैं ।

जहाँगीर स्वयं महफिल–ए–होली मे उत्साह पूर्वक भाग लेते थे । इसका प्रमाण तुजके जहांगीरी मे मिलता है । शाहजहांनी युग मे होली को ही आब–ए–पाशी या ईद–ए–गुलाबी नाम से जाना गया। मुगल सम्राट शाह आलम (१७२८–१८०६ ई.) की स्वरचित सांगीतिक रचनाओं का संग्रह 'नादिराते शाही' मे प्राप्त होता है । शाह आलम की माँ हिन्दू थी अतः ये सभी हिन्दू त्योहारों को बड़े उल्लासपूर्वक मनाते थे । 'नादिराते शाही' मे संग्रहीत सभी रचनाएँ किसी न किसी उत्सव से सम्बद्ध है चाहें वे ईद, शब–ए–बारात, मेहंदी, शादी हों अथवा होली, दीवाली, गोवर्धन पूजा आदि अन्य पर्व । (4)

मुहम्मद शाह रंगीले (१७३९ई.) के युग में नेमत खां 'सदारंग' और फिरोज खां 'अदारंग' ने होरी धमारों की अनेको उत्कृष्ट बंदिशों की रचना की जो आज तक ध्रुपद कलाकारों की वाचिक परम्परा मे गाई जाती हैं ।

उन्नीसवी शताब्दी मे अवध के नवाब वाजिद अली शाह ने 'अख्तर पिया' उपनाम से कई रचनाएं बनाई जिनमे विविध अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों मे धमार, होली, फाग, ठुमरी, सावन इत्यादी गीत बड़ी संख्या मे संकलित है । ब्रज की रास परम्परा से प्रेरणा लेकर नवाब वाजिद अली शाह 'रहस' का आयोजन करते थे जिनमे होलियों और ठुमरियो का प्रयोग होता था जो कृष्ण लीला से प्रभावित थीं तथा जिनकी गायन परम्परा का संबंध ब्रज के रास एवं चर्चरी संगीत से था ।(5)

इस प्रकार विभिन्न युगों के साहित्य एवं संगीत लक्षण ग्रन्थो के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनजीवन मे विभिन्न उत्सवो, पर्वो पर गीत संगीत नृत्यादि कलाओ का प्रदर्शन व्यक्ति के सांस्कृतिक जीवन का अनिवार्य अंग था ।

आज भी शास्त्रीय संगीत तथा विभिन्न प्रान्तों का संगीत भारत की सांस्कृतिक चेतना के प्रसार प्रचार मे एक अत्यंत सशक्त और महत्वपूर्ण कारक है जिसके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व मे भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ड और गौरवशाली धरोहर को विश्व के सभी देशों ने आदरपूर्वक सराहा है । हमारे पूज्य गुरुदेव पद्मभूषण आचार्य पंडित गोकुलोत्सवजी महाराज के शब्दों मे "सुर की संस्कृति एक सौगात है । हमें सुर के संग जीवन जीने का ढंग मिल जाए, ये सबसे बड़ी सौगात है" ।(6)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, शरद चन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या– 28, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969
2. वात्स्यायन कामसूत्रम् नागरक वृत्त प्रकरण, द्वितीय अध्याय, संपादक माधवाचार्य, दामोदर लाल, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. गुप्ता, उषा, हिंदी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य मे संगीत, पृष्ठ संख्या –359– 360, लखनऊ विश्वविद्यालय, 2016 विक्रमी
4. Ahmad, Nazma Parveen, Hindustani Music, Page No-76] Munshi Ram Manohar Publication, New Delhi 1984
5. शरर, अब्दुल हलीम, पुराना लखनऊ (गुजिश्ता लखनऊ), पृष्ठ संख्या–168, अनुवादक नूर नबी अब्बासी, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1971
6. माथुर, डा० नीता, शास्त्रीय संगीत के सूर्य, पृष्ठ संख्या–67, राधा पब्लिकेशन्स, 2011